अंक : 1, मार्च 2017

LEISA INDIA

लीज़ा इण्डिया

विशेष हिन्दी संस्करण

लीज़ा इण्डिया

विशेष हिन्दी संस्करण
मार्च 2017, अंक 1

यह अंक लीज़ा इण्डिया टीम के साथ मिलकर जी०ई०ए०जी० द्वारा प्रकाशित की जा रही है, जिसमें लीज़ा इण्डिया में प्रकाशित अंग्रेजी भाषा के कुछ मूल लेखों का हिन्दी में अनुवाद एवं संकलन है।

गोरखपुर एनवायरन्मेन्टल एक्शन ग्रुप
224, पुर्दिलपुर, एम०जी० कालेज रोड,
पोस्ट बाक्स 60, गोरखपुर-273001
फोन : +91-551-2230004
फैक्स : +91-551-2230005
ईमेल : geagindia@gmail.com
वेबसाइट : www.geagindia.org

ए.एम.ई. फाउण्डेशन
नं० 204, 100 फीट रिंग रोड, 3rd फेज़, 2nd ब्लाक,
3rd स्टेज, बनशंकरी, बैंग्लोर- 560085 , भारत
फोन : + 91-080-26699512, +91-080-26699522
फैक्स : +91-080-26699410
ईमेल : leisaindia@yahoo.co.in

लीज़ा इण्डिया
लीज़ा इण्डिया अंग्रेजी में प्रकाशित त्रैमासिक पत्रिका है, जो इलिया की सहभागिता से ए.एम.ई. फाउण्डेशन बैंग्लोर द्वारा प्रकाशित होती है।

मुख्य सम्पादक
के.वी.एस. प्रसाद, ए.एम.ई. फाउण्डेशन

प्रबन्ध सम्पादक
टी.एम.राधा., ए.एम.ई. फाउण्डेशन

अनुवाद समन्वय
अर्चना श्रीवास्तव, जी.ई.ए.जी.
पूर्णिमा, ए.एम.ई. फाउण्डेशन

प्रबन्धन
रूक्मिणी जी.जी., ए.एम.ई. फाउण्डेशन

लेआउट एवं टाईपसेटिंग
राजकान्ती गुप्ता, जी.ई.ए.जी.

छपाई
कस्तूरी ऑफसेट, गोरखपुर

आवरण फोटो
जी.ई.ए.जी.

लीज़ा पत्रिका के अन्य सम्पादन
लैटिन, अमेरिकन, पश्चिमी अफ्रीकन एवं ब्राज़ीलियन संस्करण

लीज़ा इण्डिया पत्रिका के अन्य क्षेत्रीय सम्पादन
तमिल, कन्नड़, उड़िया, तेलगू, मराठी एवं पंजाबी

सम्पादक की ओर से लेखों में प्रकाशित जानकारी के प्रति पूरी सावधानी बरती गई है। फिर भी दी गई जानकारी से सम्बन्धित किसी भी त्रुटि की जिम्मेदारी उस लेख के लेखक की होगी।

माइजेरियर के सहयोग एवं जी०ई०ए०जी० के समन्वयन में ए०एम०ई० द्वारा प्रकाशित

लीज़ा

कम बाहरी लागत एवं स्थायी कृषि पर आधारित लीज़ा उन सभी किसानों के लिए एक तकनीक और सामाजिक विकल्प है, जो पर्यावरण सम्मत विधि से अपनी उपज व आय बढ़ाना चाहते हैं क्योंकि लीज़ा के अन्तर्गत मुख्यतः स्थानीय संसाधनों और प्राकृतिक तरीकों को अपनाया जाता है और आवश्यकतानुसार ही बाह्य संसाधनों का सुरक्षित उपयोग किया जाता है।

लीज़ा पारम्परिक और वैज्ञानिक ज्ञान का संयोग है, जो विकास के लिए आवश्यक वातावरण तैयार करता है। यह भी मुख्य है कि इसके द्वारा किसानों की क्षमता को विभिन्न तकनीकों से मजबूत किया जाता है और खेती को बदलती जरूरतों और स्थितियों के अनुकूल बनाया जाता है, साथ ही उन महिला एवं पुरुष किसानों व समुदायों का सशक्तिकरण होता है, जो अपने ज्ञान, तरीकों, मूल्यों, संस्कृति और संस्थानों के आधार पर अपना भविष्य बनाना चाहते हैं।

ए.एम.ई. फाउण्डेशन, डक्कन के अर्द्वशुष्क क्षेत्र के लघु सीमान्त किसानों के बीच विकास एजेन्सियों के जुड़ाव, अनुभव के प्रसार, ज्ञानवर्द्वन एवं विभिन्न कृषि विकल्पों की उत्पत्ति द्वारा पर्यावरणीय कृषि को प्रोत्साहित करता है। यह कम लागत प्राकृतिक संसाधन प्रबन्धन के लिए पारम्परिक ज्ञान व नवीन तकनीकों के सम्मिश्रण से आजीविका स्थाईत्व को बढ़ावा देता है।

ए.एम.ई. फाउण्डेशन गांव में इच्छुक किसानों के समूह को वैकल्पिक कृषि पद्धति तैयार करने व अपनाने में सक्षम बनाने हेतु उनके साथ जुड़कर सघन रूप से काम कर रही है। यह स्थान अभ्यासकर्ताओं व प्रोत्साहकों के लिए उनकी देखने–समझने की क्षमता में वृद्धि करने हेतु सीखने की परिस्थिति के तौर पर है। इससे जुड़ी स्वयं सेवी संस्थाओं और उनके नेटवर्क को जानने के लिए इसकी वेबसाईट देखें–www.amefound.org

गोरखपुर एनवायरन्मेन्टल एक्शन ग्रुप एक स्वैच्छिक संगठन है, जो स्थाई विकास और पर्यावरण से जुड़े मुद्दों पर सन् 1975 से काम कर रहा है। संस्था लघु एवं सीमान्त किसानों, आजीविका से जुड़े सवालों, पर्यावरणीय संतुलन, लैंगिक समानता तथा सहभागी प्रयास के सिद्धान्तों पर सफलतापूर्वक कार्य कर रही है। संस्था ने अपने 30 साल के लम्बे सफर के दौरान अनेक मूल्यांकनों, अध्ययनों तथा महत्वपूर्ण शोधों को संचालित किया है। इसके अलावा अनेक संस्थाओं, महिला किसानों तथा सरकारी विभागों का आजीविका और स्थाई विकास से सम्बन्धित मुद्दों पर क्षमतावर्धन भी किया है। आज जी0ई0ए0जी0 ने स्थाई कृषि, सहभागी प्रयास तथा जेण्डर जैसे विषयों पर पूरे उत्तर भारत में अपनी विशिष्ट पहचान बनाई है। इसकी वेबसाइट देखें (www.geagindia.org)

माइजेरियर वर्ष 1958 में स्थापित जर्मन कैथोलिक बिशप की संस्था है, जिसका गठन विकासात्मक सहयोग के लिए हुआ था। पिछले 50 वर्षों से माइजेरियर अफ्रीका, एशिया और लातिन अमेरिका में गरीबी के विरूद्ध लड़ने के लिए प्रतिबद्ध है। जाति, धर्म व लिंग भेद से परे किसी भी मानवीय आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए यह हमेशा तत्पर है। माइजेरियर गरीबी और हानियों के विरूद्ध पहल करने के लिए प्रेरित करने में विश्वास रखता है। यह अपने स्थानीय सहयोगियों, चर्च आधारित संगठनों, गैर सरकारी संगठनों, सामाजिक आन्दोलनों और शोध संस्थानों के साथ काम करने को प्राथमिकता देता है। लाभार्थियों और सहयोगी संस्थाओं को एक साथ लेकर यह स्थानीय विकासात्मक क्रियाओं को साकार करने और परियोजनाओं को क्रियान्वित करने में सहयोग करता है। यह जानने के लिए कि स्थिर चुनौतियों की प्रतिक्रिया में माइजेरियर किस प्रकार अपनी सहयोगी संस्थाओं के साथ काम कर रहा है। इसकी वेबसाइट देखें (www.misereor.de; www.misereor.org)

मोरैना में खेती में पानी की बचत

अमिता भादुरी

मध्य प्रदेश के निधान गांव में किसानों ने पानी के कम उपभोग की गतिविधियां अपनाकर एक वर्ष में दो फसलें लेने का रास्ता देख रहे हैं। इस गांव के किसान खेती में पानी के कौशलपूर्ण प्रयोग को स्थानीय कृषि विज्ञान केन्द्र के निर्देशन में अपना रहे हैं।

अनुक्रमणिका

विशेष हिन्दी संस्करण, मार्च 2017

5 **मोरैना में खेती में पानी की बचत**
अमिता भादुरी

7 **विदर्भ क्षेत्र में मृदा उर्वरता को पुनर्जीवित करना**
प्रीति जोशी

10 **जैविक कृषि तकनीकी आज की आवश्यकता**
ज्ञानेन्द्र कुमार, लोकेश कुमार टिण्डे, अरविन्द कुमार साईं, राजमणि, अंशुमान श्रीवास्तव व डिकेश्वर निषाद

13 **खेती की तरफ लौटना**
एस. उषा, आर. दीपक एवं मंजू नैयर

16 **संजीव ने खेती कर राष्ट्रीय स्तर पर बनायी पहचान**
संदीप कुमार

18 **आजीविका सुधार हेतु जल प्रयोग गतिविधियों को उन्नत बनाना**
मिन बहादुर गुरूंग, गोविन्द बसनेत, शहरयार वाहिद एवं गुलाम रसूल

विदर्भ क्षेत्र में मृदा उर्वरता को पुनर्जीवित करना

प्रीति जोशी

विशेषकर किसानों की आत्महत्या के लिए प्रख्यात विदर्भ के सौभाग्य के तौर पर वहां के कुछ ऐसे किसान हैं, जो जैविक तरीकों को अपनाकर अपनी मृदा उर्वरता को पुनः जीवन प्रदान करने में सफल हो रहे हैं। इन्हीं में से एक किसान सुभाष शर्मा हैं, जिनकी सफलता को यहां पर वर्णित किया गया है।

जैविक कृषि तकनीकी आज की आवश्यकता

ज्ञानेन्द्र कुमार, लोकेश कुमार टिण्डे, अरविन्द कुमार साईं, राजमणि अंशुमान श्रीवास्तव व डिकेश्वर निषाद

मूलतः प्राकृतिक ढंग से खेती करने की तकनीक जैविक खेती में रसायनों का समावेश न होने से आज के समय में यह खेती अधिक प्रासंगिक हो गयी है। जबकि पूरी दुनिया में आपदाओं की तीव्रता बढ़ती जा रही है, खेती का अस्तित्व संकट में है और खेती से जुड़ा एक बड़ा वर्ग विभिन्न कारणों से खेती छोड़ना चाह रहा है, ऐसे समय में जैविक खेती के ऊपर समझ बनाना आवश्यक प्रतीत होता है। जैविक खेती की महत्ता एवं आवश्यकता को इस बात से भी समझा जा सकता है कि पश्चिमी देशों में स्नातकोत्तर स्तर की शिक्षा में यह एक महत्वपूर्ण विषय के रूप में हो गया है।

खेती की तरफ लौटना

एस. उषा, आर. दीपक एवं मंजू नैयर

खाद्य अनाजों पर से अपना नियन्त्रण खो देने वाली केरल की महिलाएं स्थानीय स्तर पर उपलब्ध होने वाली जैविक पद्धतियों को अपनाकर अब फिर से खेती की तरफ लौट रही हैं। इस पारिस्थितिकी तंत्र पद्धति में रूचि लेते हुए बहुत से किसान समूह एवं संगठन कृषिगत जैव विविधता को समृद्ध बनाने की कला सीख रहे हैं।

संजीव ने खेती कर राष्ट्रीय स्तर पर बनायी पहचान

संदीप कुमार

सब्ज़ियों की खेती आज बहुत प्रचलन में है और लोगों विशेषकर महिला किसानों के लिए यह एक लाभप्रद आयजनक गतिविधि भी है। ऐसी स्थिति में सब्ज़ियों की खेती के लिए गुणवत्तापूर्ण बीजों का स्थानीय स्तर पर उत्पादन एवं विपणन एक अच्छी गतिविधि के रूप में सामने आ रही है। वैशाली जिला बिहार के संजीव कुमार एक ऐसे ही उदाहरण के रूप में गोभी का बीज उत्पादन कर रहे हैं।

आजीविका सुधार हेतु जल प्रयोग गतिविधियों को उन्नत बनाना

मिन बहादुर गुरूंग, गोविन्द बसनेत, शहरयार वाहिद एवं गुलाम रसूल

नेपाल के कोसी बेसिन में पानी की वर्तमान मांग को पूरा करने हेतु पारम्परिक जल प्रयोग गतिविधियां पर्याप्त नहीं हैं। जल की बढ़ती मांग को पूरा करने के लिए जल प्रबन्धन में किये गये अच्छे कार्यों और बेहतर उत्पाद परिणामों को इस आशय से दस्तावेजित किया गया है ताकि इनका दुहराव बड़े पैमाने पर हो सके।

यह अंक...

जैविक खेती के विभिन्न तथ्यों/पहलुओं पर आधारित लीज़ा पत्रिका का यह अंक आपके समक्ष प्रस्तुत है। इस अंक में विभिन्न क्षेत्रों के उन लेखों को समाहित करने का प्रयास किया गया है, जो खेती को लाभप्रद बनाने की दिशा में किये गये कार्यों एवं गतिविधियों पर आधारित हैं। साथ ही उन किसानों को भी पत्रिका में स्थान दिया गया है, जो जैविक खेती के विभिन्न पहलुओं पर काम करते हुए एक तरफ तो अपनी आजीविका को उन्नत कर रहे हैं तो दूसरी तरफ जलवायु परिवर्तन के प्रभावों को कम करने की दिशा में भी अग्रसर हो रहे हैं।

पत्रिका का पहला लेख अमिता भादुरी द्वारा लिखित ''मोरैना में कम पानी में खेती'' है। इस लेख में लेखिका ने यह बताने का प्रयास किया है कि किस प्रकार मोरैना जैसे पहाड़ी व बंजर भूमि में सूखा सहनीय प्रजातियों को लगाकर किसानों ने अपनी आजीविका को सुदृढ़ किया है। किसानों की आत्महत्या के लिए प्रसिद्ध विदर्भ क्षेत्र में किसानों के लिए आशा के दीप जलाते किसान श्री सुभाष शर्मा की कहानी प्रेरणास्रोत का काम कर सकती है। इसी विषय पर पत्रिका का दूसरा लेख ''विदर्भ क्षेत्र में मृदा उर्वरता को पुनर्जीवित करना'' प्रीती जोशी द्वारा लिखित है। जलवायु परिवर्तन के इस दौर में जबकि मृदा एवं जल प्रदूषण अपनी चरम पर पहुंच रहा है, ऐसे ही नाजुक समय में ''जैविक कृषि तकनीकी आज की आवश्यकता'' विषय पर ज्ञानेन्द्र कु0, लोकेश कु0 टिण्डे, अरविन्द कु0 साईं, राजमणि, अंशुमन श्रीवास्तव तथा डिकेश्वर निषाद द्वारा लिखित लेख पत्रिका के तीसरे पायदान पर है जबकि चौथे लेख ''खेती की तरफ लौटना'' से लेखकगण एस उषा, आर दीपक तथा मंजू नैयर ने यह बताने का प्रयास किया है कि यदि तकनीकों एवं विषय की सही जानकारी हो तो युवाओं को पारम्परिक खेती की ओर पुनः वापस लौटाया जा सकता है। पांचवां लेख ''संजीव ने खेती कर राष्ट्रीय स्तर पर बनायी पहचान'' बिहार के एक छोटे से गाँव के किसान श्री संजीव कुमार के बारे में है, जिसने एक विशिष्ट प्रजाति के गोभी के बीजों का उत्पादन कर अपनी आजीविका को कई गुणा तक बढ़ाया है। यह लेख संदीप कुमार द्वारा लिखित है।

मिन बहादुर गुरूंग, गोविन्द बसनेत, शहरयार वाहिद एवं गुलाम रसूल द्वारा लिखित लेख ''आजीविका सुधार हेतु जल प्रयोग गतिविधियों को उन्नत बनाना'' पत्रिका का अन्तिम लेख है, जो पड़ोसी देश नेपाल की पृष्ठभूमि से लिया गया है। नेपाल की स्थानीय परिस्थितियां बहुत कुछ भारत के हिन्दी भाषी क्षेत्रों से मिलती है और पहाड़ी क्षेत्र होने के नाते वहां पर पानी का प्रबन्धन एक बड़ी समस्या है। इस समस्या से निपटने हेतु समुदाय द्वारा किये गये प्रयासों पर ही यह लेख आधारित है।

अन्त में यदि स्थानीय परिस्थितियों को ध्यान में रखकर अपनाया जाय तो पत्रिका में दिये गये लेखों की उपयोगिता निश्चित तौर पर किसानों विशेषकर महिला किसानों के लिए है। पत्रिका के लेखों व उनकी उपयोगिता पर आपके विचार व सुझाव हमारे लिए अमूल्य हैं। इनकी अपेक्षा में...

• **सम्पादक मण्डल**

फोटो : लेखक

गेहूँ की सूखा सहनीय प्रजाति

मोरैना में खेती में पानी की बचत

अमिता भादुरी

मध्य प्रदेश के निधान गांव में किसान पानी के कम उपभोग की गतिविधियां अपनाकर एक वर्ष में दो फसलें लेने का रास्ता देख रहे हैं। इस गांव के किसान खेती में पानी के कौशलपूर्ण प्रयोग को स्थानीय कृषि विज्ञान केन्द्र के निर्देशन में अपना रहे हैं।

निधान, मध्यप्रदेश का एक गांव है, जो अपने जिला मुख्यालय मोरैना से लगभग 30 किमी0 की दूरी पर अवस्थित है। जिले के जौरा विकासखण्ड में स्थित इस गांव में वर्षा का वार्षिक औसत 450 मिमी0 है, जो ज्यादातर जुलाई व अगस्त महीने में ही हो जाता है। इस गांव के अधिकांश किसान वर्षा आधारित खेती करते हैं और रबी ऋतु में उनके लिए सिंचाई का मुख्य स्रोत बोरवेल होते हैं। पिछले कुछ वर्षों से कम वर्षा होने के कारण इस गांव के अधिकांश बोरवेल सूख गये हैं और गांव को लगातार सूखा स्थितियों का सामना करना पड़ रहा है। गांव की भौगोलिक स्थितियां कुछ ऐसी हैं कि नीची भूमि में जल–जमाव के कारण खरीफ ऋतु में उस पर खेती नहीं हो पाती है और ऊंची भूमि पर हुई खेती को जाड़े में पाला की समस्या से जूझना पड़ता है। फसलों पर कीटों व बीमारियों का प्रकोप दोनों ऋतुओं में समान रूप से होता है। इसके साथ ही उन्नत बीजों तथा खेती में प्रयुक्त होने वाले तकनीकों व यंत्रों तक भी गांव के किसानों की पहुँच नहीं हो पाती है और मजदूरी भी नहीं मिलती है।

गांव की मुख्य फसल बाजरा, अरहर, गेंहू और सरसो है। क्षेत्र स्थाई कृषि पद्धति को ध्यान में रखते हुए– गेंहूं की खेती के बाद अरहर की खेती की जाती है। फिर भी पिछले कुछ वर्षों में विभिन्न कारणों के चलते अरहर की खेती का क्षेत्रफल घटा है। इसके पीछे सबसे बड़ा कारण तो यह है कि बारिश की अनियमितता के चलते समय से बुवाई एवं पौधरोपण करना किसानों के लिए मुश्किल हो गया है। इस कारण पहले से ही 220–250 दिनों की लम्बी परिपक्वता अवधि की फसलों को नुकसान पहुँचा है। इसके अलावा जाड़े के ऋतु में पाला की गम्भीर समस्या के

खेत की बहुत कम तैयारी कर गेंहू की तुरन्त बुवाई करने से ऊर्जा की बचत की गयी, जबकि पलेवा सिंचाई को न करने से पानी की बचत हुई।

कारण फसल बहुत सी बीमारियों जैसे – विल्ट और बांझपन मोजैक से प्रभावित होता है और उसके कारण भी उत्पादकता घटती है। किसान हालांकि बेहतर आमदनी प्राप्त करना चाहते हैं, परन्तु लम्बी अवधि की फसल होने से कोई दूसरी फसल भी नहीं ले पाते। यह भी देखा गया कि अरहर के बाद गेंहूं की खेती करने से मार्च के महीनों में तापमान बढ़ने के कारण गेंहू की उत्पादकता भी घट जाती है। यह समस्या उस पूरे मध्य भारत क्षेत्र की है, जहां पिछले कुछ समय से अरहर की खेती मुख्य फसल के तौर पर की जा रही थी।

समाधान ढूढ़ना

इस समस्या का एक समाधान यह सोचा गया कि कम अवधि की फसल प्रजातियों को विकसित किया जाये। लेकिन इन प्रजातियों के लिए सिंचाई सुविधाओं की आवश्यकता थी। साथ ही यह भी देखा गया कि अगर जुलाई के प्रथम सप्ताह से पहले बोयी जाने वाली तथा दिसम्बर के प्रथम सप्ताह से पहले काटी जाने वाली कम अवधि की अरहर की प्रजाति की खेती की गयी तो उसके लिए भी 5–8 बार जुताई तथा पहले सिंचाई करने की आवश्यकता पड़ी। इससे गेंहूं की फसल बुवाई में देरी हुई। सामान्यतः गेंहू की बुवाई में प्रत्येक दिन की देरी से उत्पादन में प्रति दिन 1–1.5 प्रतिशत की गिरावट होती है। इसके साथ ही अगली फसल के लिए ऊर्जा, बीज, पोषण एवं सिंचाई की अत्यधिक मात्रा में आवश्यकता होगी, जिससे खेती का निवेश बढ़ेगा।

विकल्प के रूप में, स्थानीय कृषि विज्ञान केन्द्र ने जलवायु संवेदी कृषि पर राष्ट्रीय पहल के एक भाग के तौर पर, सिंचाई के प्रबन्धन में नई पद्धतियों को प्रोत्साहित करने की योजना बनाई। भारतीय कृषि को जलवायु परिवर्तन संवेदी बनाने के उद्देश्य के साथ वर्ष 2011 में इस राष्ट्रीय योजना की शुरूआत की गयी। देश के प्रत्येक जिले में कृषि विज्ञान केन्द्र की मौजूदगी को देखते हुए उन्हें देश के 100 नाजुक जिलों में इस प्रदर्शन के आयोजन की जिम्मेदारी सौंपी गयी।

गेंहूँ की सूखा सहनीय प्रजातियों को लाया गया तथा भीषण गर्मी से बचाने के लिए पहले इसकी नर्सरी तैयार कर पौधरोपण किया गया। कृषि विज्ञान केन्द्र के साथ मिलकर गांव के किसानों ने ऐसे और भी प्रयोगों को शुरू किया। निधान गांव के किसानों ने कृषि विज्ञान केन्द्र द्वारा आयोजित बैठकों में भाग लेना प्रारम्भ कर दिया और के0वी0के0 की देख–रेख में अपने खेत में कम से कम पौधों का रोपण किया। उन्होंने खेत की तीन बार जुताई कर गेंहूँ की जीडब्ल्यू–366 या एमपी– 4010 प्रजाति की सीड–फर्टिलाइजर ड्रिल मशीन के माध्यम से लाइन से बुवाई की। हरित खाद के लिए ढैंचा का भी उपयोग किया गया।

अरहर की फसल लेने के बाद शुष्क बुवाई विधि से गेंहूँ की बुवाई की गयी। इससे नर्सरी तैयार करने तथा पहली सिंचाई में लगने वाले समय की बचत हुई। स्थानीय स्तर पर पलेवा सिंचाई के नाम से प्रचलित इस तरीके में आराम से 10–15 दिन का समय लग जाता था। खेत की बहुत कम तैयारी कर गेंहूं की तत्काल बुवाई करने से ऊर्जा की बचत हुई, जबकि पलेवा सिंचाई न करने से जल की बचत हुई। इससे यह भी सुनिश्चित हुआ कि सभी पौधे एक समान उगे। जलस्तर घटने की चेतावनी मिलने के बाद से किसानों ने जल का कौशलपूर्ण उपयोग करना सीख लिया। किसानों ने दो सिंचाई करनी शुरू की। पहली सिंचाई उन्होंने गेंहूँ की बुवाई के तुरन्त बाद की ताकि सभी पौधों का अंकुरण सही से हो जाये और दूसरा बुवाई के 40–45 दिन के बाद किया। बेड और चैनल बनाकर खेत की सिंचाई करते हुए उन्होंने पानी का उपयोग कुशलता से किया। इस प्रक्रिया को अपनाते हुए उन्होंने प्रति हेक्टेयर 53.8 कुन्तल गेंहूँ की उपज प्राप्त की।

गांव के 125 खेतिहर परिवारों ने इस पद्धति को अपनाया। अरहर की कटाई से पहले सिंचाई और अरहर की कटाई के बाद सिंचाई से होने वाले उपज की भी तुलना की गयी और पाया गया कि पहले की तुलना में उपज में लगभग 11 प्रतिशत की वृद्धि हुई है। गाँव के 32 किसानों द्वारा जीरो टिलेज अपनाया गया है। वर्ष 2012–13 में जीरो टिलेज पद्धति से 50 हेक्टेयर खेत की बुवाई की गयी और परिणामस्वरूप 112 कुन्तल अधिक अनाज का उत्पादन हुआ। इससे गांव के किसानों की लगभग 1.88 लाख रूपये की बचत हुई। जीरो टिलेज पद्धति से बुवाई के फायदे को देखते हुए वर्ष 2013 में आस–पास के जिलों में लगभग 200 हेक्टेयर में इस विधि से गेंहूँ की खेती की गयी।

यह कहना अधिक सुरक्षित हो सकता है कि इन पद्धतियों के अपनाने से उपज एवं लाभ दोनों में वृद्धि हुई है। किसान इसे खेती करने के नये तरीके के रूप में देख रहे हैं और उनमें से अधिकांश का यह भी मानना है कि जलवायु परिवर्तन के इस दौर में स्थाई खेती प्रणाली का यह तरीका अधिक प्रभावी है।

■

अमिता भादुरी
कार्यक्रम निदेशक, वाटरशेड विकास प्रोत्साहन सोसायटी
14 ए, विष्णु दिगम्बर मार्ग
नई दिल्ली- 110002
ईमेल : amitabhaduri@gmail.com

Water-lifeline for livelihoods
LEISA INDIA, Vol 17, No.3, Sept. 2015

विदर्भ क्षेत्र में मृदा उर्वरता को पुनर्जीवित करना

प्रीती जोशी

विशेषकर किसानों की आत्महत्या के लिए प्रख्यात विदर्भ के सौभाग्य के तौर पर वहां के कुछ ऐसे किसान हैं, जो जैविक तरीकों को अपनाकर अपनी मृदा उर्वरता को पुनः जीवन प्रदान करने में सफल हो रहे हैं। इन्हीं में से एक किसान सुभाष शर्मा हैं, जिनकी सफलता को यहां पर वर्णित किया गया है।

फोटो : लेखक

अपने हरे खेत में शर्मा

यह आश्चर्यजनक है कि जीवन एवं खाद्य के सभी स्रोतों का माध्यम होने के बावजूद मृदा के प्रति अभी भी लोगों की समझ बहुत अच्छी नहीं है। महाराष्ट्र के विदर्भ क्षेत्र में, बहुत से किसानों का यह अनुभव है कि रसायनिक उर्वरकों व कीटनाशकों के अत्यधिक उपयोग के कारण कृषि घाटे का सौदा हो रही है और खेती में लगातार असफलता ही मिल रही है। विदर्भ, जो विशेष रूप से किसानों की आत्महत्या के लिए प्रख्यात है, वहां पर सौभाग्यवश कुछ ऐसे किसान भी हैं, जो जैविक तरीकों को अपनाकर अपनी मृदा उर्वरता को पुनः जीवन प्रदान करने में सफल हो रहे हैं। सुभाष शर्मा इन्हीं में से एक किसान हैं।

विदर्भ के यवतमाल जिले के एक जैविक किसान सुभाष शर्मा ने वर्ष 1975 में रसायनिक विधि से खेती करना प्रारम्भ किया। यद्यपि कि प्रारम्भ में उन्हें अच्छी उपज मिली, लेकिन 1986 के बाद भूमि की उर्वरता में तेजी से ह्रास हुआ और उन्हें भारी नुकसान का सामना करना पड़ा। वर्ष 1996 में, उन्होंने बीजों, मृदा, जल, फसल प्रणाली और श्रम प्रबन्धन पर केन्द्रित प्राकृतिक खेती करना प्रारम्भ कर दिया। उनका यह दृढ़ विश्वास है कि कृषि को स्थाईत्व प्रदान करने के लिए गायें (पशुधन), पेड़, चिड़िया और वनस्पति चार महत्पूर्ण तत्व हैं। शर्मा ने मृदा उर्वरता को उन्नत बनाने के लिए कुछ तकनीकों का प्रयोग किया और परिणामस्वरूप मृदा उत्पादकता में वृद्धि हुई।

मृदा उर्वरता उन्नत करने के तरीके

खेत के अपशिष्टों से खाद तैयार करना : शर्मा कहते हैं कि 3 एकड़ खेत के मृदा की पोषण आवश्यकता एक गाय से पूरी की जा सकती है। 800 किग्रा0 तालाब की गाद अथवा पेड़ के नीचे की उर्वर मृदा के साथ शर्मा खेत के अपशिष्टों से तैयार खाद का 3 टन मिश्रण तैयार करते हैं। पेड़ से गिरने वाले पत्तों, चिड़ियों एवं कीटों के अपशिष्ट आदि के बराबर गिरते रहने के कारण पेड़ के नीचे की मिट्टी सूक्ष्म जीवाणुओं तथा पोषक तत्वों की दृष्टि से काफी समृद्ध व पोषक होती है। इस मिश्रण को तैयार करने के लिए अरहर की फलियों के 100 किग्रा0 भूसा में 2 लीटर मूंगफली का तेल मिलाकर उसे खूब अच्छी तरह मिलाते हैं। पुनः 25 किग्रा0 गुड़ को पानी मिलाकर एक घोल तैयार कर मूंगफली का तेल मिले भूसे में मिलाते हैं। अब इस मिश्रण को अच्छी तरह पानी में भिगाकर एक ढेर के रूप में रखकर दो महीनों के लिए छोड़ देते हैं। एक माह बाद इस

> एक किसान के लिए यह बहुत आवश्यक है कि वह मृदा संरचना के आधारभूत विज्ञान को समझे।

ढेर को उलट–पलट कर फिर से पानी से अच्छी तरह भिगाकर छोड़ देते हैं। एक माह बाद यह पूरी तरह खाद बनकर तैयार हो जाती है। इस तैयार खाद को एक–एक मुट्ठी प्रत्येक पौधे की जड़ के पास डाल सकते हैं या फिर बीज बोते समय सीडड्रिल मशीन में बीज के साथ भी डाल सकते हैं। दालों की भूसी और गुड़ के मिश्रण से सूक्ष्म जीवाणुओं की गतिविधि बढ़ाने के लिए प्रोटीन और सुगर उपलब्ध होता है, जिससे मृदा में कार्बनिक पदार्थों की मात्रा बढ़ती है तथा सूक्ष्म जीवाणुओं से मृदा समृद्ध होती है।

तरल खाद गो–संजीवक तैयार करना उनकी दूसरी तकनीक है। जाड़े के दिनों में इसका छिड़काव सिंचाई के पानी के साथ कर सकते हैं। इस तरल खाद को तैयार करने के लिए 10 किग्रा0 गाय का ताजा गोबर और 10 लीटर गौ–मूत्र, एक किग्रा0 दाल की भूसी एवं 250 ग्राम गुड़ को लेकर घोल तैयार करते हैं। अब सभी मिश्रण को 50 लीटर पानी मिलाकर 8–10 दिनों तक रख देते हैं। अब इस तैयार मिश्रण में 200 लीटर पानी मिलाकर सिंचाई के समय खेत में छिड़काव करते हैं। यह तैयार घोल एक एकड़ खेत के लिए पर्याप्त होता है। तरल रूप में इस खाद का प्रयोग करने से मृदा की सभी आवश्यक पोषक आवश्यकता पूरी होती हैं, जिससे उनमें सूक्ष्म जीवाणुओं की संख्या में वृद्धि होती है। शर्मा के खेत की एक मुट्ठी मिट्टी में औसतन 100 केंचुए तक पाये जाते हैं।

हरित खाद या ओरोग्रीन

शर्मा ने अपनी ऊसर भूमि पर सबसे पहले अरहर की बुवाई लाइन से की। अरहर की दो लाइनों के बीच उन्होंने ओरोग्रीन के मिश्रण की बुवाई की। ओरोग्रीन में बीजों का मेल इस प्रकार है –

- दो दालों वाले कई प्रकार के बीज समान मात्रा में (जैसे उर्द / चना 2 किग्रा0, सेम फली 2 किग्रा0, अरहर 2 किग्रा0)
- एक दाल वाले अनाज जैसे बाजरा 500 ग्राम, ज्वार 500 ग्राम एवं मक्का 3 किग्रा0
- तिलहन बीज जैसे तिल 100 ग्राम, सोयाबीन या मूंगफली या सूर्यमुखी 900 ग्राम

विभिन्न प्रकार के इन सभी बीजों को अच्छी तरह आपस में मिलाकर बरसात के मौसम में अरहर की दो लाइनों के बीच बुवाई कर देते हैं। अंकुरण के 50–55 दिनों के बाद, खेत में उगे इस मिश्रित बायोमॉस को काटकर अरहर की लाइनों के बीच में मल्चिंग कर देते हैं। एक–दो महीने के बाद इस हरित बायोमॉस के आधा सड़ जाने के बाद खेत की जुताई कर देते हैं। यह हरित खाद न केवल मिट्टी को कार्बनिक पदार्थ उपलब्ध कराती है, वरन् इससे खेत में घास भी नहीं जमती और मृदा में लम्बे समय तक नमी बनी रहती है।

मृदा उर्वरता को समृद्ध बनाने के लिए शर्मा दलहनी फसलों के साथ फसली चक्रीकरण अपनाते हैं। वह फसली मौसम की पहली फसल के तौर पर दलहनी फसल जैसे चावली–सेम की खेती करते हैं। पौधों से हमेशा पत्ते झरने के कारण मृदा में कार्बनिक पदार्थ समृद्ध होती है और जड़ों के पास गांठें होने से मिट्टी को नाइट्रोजन भी पर्याप्त मात्रा में मिलती है। वह अपने ऊसर भूमि पर निम्न प्रकार से फसल चक्र अपनाते हैं –

1) चावली सेम –जून से सितम्बर 2) मेथी / पालक / हरा प्याज – अक्टूबर से नवम्बर 3) गेंहू – नवम्बर से मार्च 4) कोंहड़ा – अप्रैल से जून

तालिका 1 :
विभिन्न फसलों से मिलने वाली उपज एवं आमदनी

बोयी गयी फसल	उत्पादकता	लागत (रु० में)	अनुमानित आमदनी (रु० में)	प्रति एकड़ खर्च
चावली सेम	30 कुन्तल	30/किग्रा०	90,000.00	25 प्रतिशत
हरा प्याज	150 कुन्तल	10/किग्रा०	1,50,000.00	40 प्रतिशत
मेथी	30 कुन्तल	10-20/किग्रा०	60,000.00	30 प्रतिशत
पालक	30 कुन्तल	20-30/किग्रा०	75,000.00	25 प्रतिशत
हरा धनिया	60 कुन्तल	10/किग्रा०	60,000.00	30 प्रतिशत
सभी प्रकार के बीज	4 कुन्तल	150/किग्रा०	60,000.00	10 प्रतिशत
गेहूँ	14-15 कुन्तल	40/किग्रा०	60,000.00	30 प्रतिशत
काबुली चना	10 कुन्तल	35/किग्रा०	35,000.00	10 प्रतिशत
कोहड़ा	10 टन/एकड़	15/किग्रा०	1,50,000.00	20 प्रतिशत

वह अपने एक या दो एकड़ खेत में प्रतिवर्ष अरहर की खेती करते हैं। उनका कहना है कि इस फसल से इतनी ज्यादा पत्तियां गिरती हैं कि उनसे पूरे खेत में एक से दो इंच की बायोमॉस की परत तैयार हो जाती है, जिससे खेत में कार्बनिक पदार्थ की मात्रा बढ़ती है। उन्होंने सोचा कि धनिया एक ऐसी फसल है, जिससे उनके खेत का पारिस्थितिकी संतुलन बना रहता है। एक तरफ तो धनिया की हरी पत्तियों से निकलने वाली खूशबू से अन्य फसलों पर लगने वाले कीड़े दूर रहते हैं तो दूसरी तरफ, धनिया के

आकर्षक सफेद फूल मधुमक्खियों को अपनी तरफ आकर्षित करते हैं और इस प्रकार परागण क्रिया के माध्यम से अच्छे बीजों के विकसित होने की प्रक्रिया को बढ़ावा मिलता है।

मृदा उर्वरता बढ़ाने की तकनीकों के अतिरिक्त, शर्मा अपनी खेती को स्थाईत्व प्रदान करने के लिए स्थाई खेती के अन्य तकनीकों / गतिविधियों को भी अपनाते हैं। उदाहरण के लिए, वे मृदा क्षरण रोकने तथा मृदा नमी को बनाये रखने के लिए कन्टूर पद्धति से बुवाई करते हैं, जल संरक्षण के लिए अपने खेत पर तालाब की खुदाई करते हैं, फसलों से कीड़ों को दूर रखने के लिए गेंदे के फूल तथा धनिया की खेती करते हैं व अपने खेत के चारों तरफ मेड़ों पर पेड़ लगाते हैं ताकि तेज हवा के बहाव से होने वाले मृदा क्षरण को रोका जा सके।

वे अपने 13 एकड़ खेत से लगभग 18–20 लाख का उत्पादन करते हैं और उनके अनुसार उन्हें लगभग 50 प्रतिशत का लाभ मिलता है (तालिका सं0 1 देखें)

निष्कर्ष

कृषि के इस वैश्वीकरण के दौर में, जहां रसायनिक खेती बड़े पैमाने पर हो रही है, सुभाष शर्मा जैसे किसान बहुतों के लिए प्रेरणास्रोत बन रहे हैं। मृदा की प्रकृति को समझते हुए, कुछ नवोन्वेषी किसान विश्व को यह दिखा रहे हैं कि कृषि–पारिस्थितिकी पर आधारित गतिविधि ही एक ऐसा माध्यम है, जिससे हम मृदा की उर्वरता को उन्नत बनाते हुए स्थाई खेती की तरफ जा सकते हैं।

■

प्रीति जोशी
निदेशक, राष्ट्रीय सामुदायिक कल्याण संगठन
2, जजोदिया लेआउट, श्रीनिवास कालोनी
वर्धा, महाराष्ट्र- 442001
ईमेल : Priti1266@gmail.com

Soils for life
LEISA INDIA, Vol 17, No.1, March. 2015

Issues and Themes of LEISA INDIA Published in English 2000-2016

V.2, No. 1, 2000 - Desertification
V.2, No. 2, 2000 - Farmer innovations
V.2, No. 3, 2000 - Farming in the forest
V.2, No. 4, 2000 - Monocultures towards sustainability

V.3, No. 1, 2001 - Coping with disaster
V.3, No. 2, 2001 - Go global stay local
V.3, No. 3, 2001 - Lessons in scaling up
V.3, No. 4, 2001 - Biotechnology

V.4, No. 1, 2002 Managing Livestock
V.4, No. 2, 2002 - Rural Communication
V.4, No. 3, 2002 - Recreating living soil
V.4, No. 4, 2002 - Women in agriculture

V.5, No. 1, 2003 - Farmers Field School
V.5, No. 2, 2003 - Ways of water harvesting
V.5, No. 3, 2003 - Access to resources
V.5, No. 4, 2003 - Reversing Degradation

V.6, No. 1, 2004 - Valuing crop diversity
V.6, No. 2, 2004 - New generation of farmers
V.6, No. 3, 2004 - Post harvest Management
V.6, No. 4, 2004 - Farming with nature

V.7, No. 1, 2005 - On Farm Energy
V.7, No. 2, 2005 - More than Money
V.7, No. 3, 2005 - Contribution of Small Animals
V.7, No. 4, 2005 - Towards Policy Change

V.8, No. 1, 2006 - Documentation for Change
V.8, No. 2, 2006 - Changing Farming Practices
V.8, No. 3, 2006 - Knowledge Building Processes
V.8, No. 4, 2006 - Nurturing Ecological Processes

V.9, No. 1, 2007 - Farmers Coming together
V.9, No. 2, 2007 - Securing Seed Supply
V.9, No. 3, 2007 - Healthy Produce, People and Environment
V.9, No. 4, 2007 - Ecological Pest Management

V.10, No. 1, 2008 -Towards Fairer Trade
V.10. No. 2, 2008 - Living soils
V.10, No. 3, 2008 - Farming and Social Inclusion
V.10, No. 4, 2008 - Dealing with Climate Change

V.11, No. 1, 2009 - Farming Diversity
V.11, No. 2, 2009 - Farmers as Entrepreneurs
V.11, No. 3, 2009 - Women and Food Sovereignty
V.11, No. 4, 2009 - Scaling up and sustaining the gains

V.12, No.1, 2010 - Livestock for sustainable livelihoods
V.12, No.2, 2010 - Finance for farming
V.12, No.3, 2010 - Managing water for sustainable farming

V.13, No.1, 2011 - Youth in farming
V.13, No.2, 2011 - Trees and farming
V.13, No.3, 2011 - Regional Food System
V.13, No.4, 2011 - Securing Land Rights

V.14, No.1, 2012 - Insects as Allies
V.14, No.2, 2012 - Greening the Economy
V.14, No.3, 2012- Farmer Organisations
V.14, No.4, 2012- Combating Desertification

V. 15, No.1, 2013- SRI: A scaling up success
V. 15, No.2, 2013- Farmers and market
V. 15, No.3, 2013- Education for change
V. 15, No.4, 2013- Strengthening family farming

V. 16, No. 1, 2014- Cultivating farm biodiversity
V. 16, No. 2, 2014- Family farmers breaking out of poverty
V. 16, No. 3, 2014- Family farmers and sustainable landscapes
V. 16, No. 4, 2014- Family farming and nutrition

V. 17, No. 1, 2015- Soils for life
V. 17, No. 2, 2015- Rural-urban linkages
V. 17, No. 3, 2015- Water-lifeline for livelihoods
V. 17, No. 4, 2015- Women forging change

V.18, No.1, 2016- Co-creation of knowledge
V.18, No.2, 2016-Valuing underutilised crops
V.18, No.3, 2016-Agroecology-Measurable and sustainable
V.18, No.4, 2016-Stakeholders in agroecology

जैविक कृषि तकनीकी आज की आवश्यकता

ज्ञानेन्द्र कुमार, लोकेश कुमार टिण्डे, अरविन्द कुमार साईं, राजमणि, अंशुमान श्रीवास्तव व डिकेश्वर निषाद

मूलतः प्राकृतिक ढंग से खेती करने की तकनीक जैविक खेती में रसायनों का समावेश न होने से आज के समय में यह खेती अधिक प्रासंगिक हो गयी है। जबकि पूरी दुनिया में आपदाओं की तीव्रता बढ़ती जा रही है, खेती का अस्तित्व संकट में है और खेती से जुड़ा एक बड़ा वर्ग विभिन्न कारणों से खेती छोड़ना चाह रहा है, ऐसे समय में जैविक खेती के ऊपर समझ बनाना आवश्यक प्रतीत होता है। जैविक खेती की महत्ता एवं आवश्यकता को इस बात से भी समझा जा सकता है कि पश्चिमी देशों में स्नातकोत्तर स्तर की शिक्षा में यह एक महत्वपूर्ण विषय के रूप में शामिल हो गया है।

जैविक खेती मूलतः प्राकृतिक ढंग से खेती करने की तकनीक है। जिसमें हानिकारक रसायनों का समावेश नहीं होता है। पिछले 5–6 वर्षो में जैविक खेती ने इतनी उन्नति कर ली है कि पश्चिमी देशों में इस विषय पर स्नातकोत्तर स्तर की शिक्षा भी दी जाने लगी है। भारत में भी जैविक खेती को पर्याप्त प्रचार–प्रसार मिल रहा है। इस विषय पर अब तक हुए शोध के परिणामस्वरूप प्राप्त कुछ उपलब्धियों की झलक इस प्रकार है :

- लाभदायक सूक्ष्मजीवों जैसे नील हरित काई, राइजोबियम, एजोटोबेक्टर, एजोस्पाइरिलम, अजोला आदि का उपयोग नाईट्रोजन स्थिरीकरण हेतु दलहनी व धान्य फसलों में किया जाने लगा है।

- लाभदायी कृमियों की जाति जैसे आईसिनिया फीटेडा की पहचान की गई जो भूमि की संरचना सुधारने एवं उर्वरा शक्ति को बढ़ाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

- हरी खाद हेतु ढ़ैंचा की नई किस्म सेस्बेनियां रोस्ट्रेटा विकसित की गई, जो लगभग 20 किलोग्राम तक वायुमण्डलीय नत्रजन प्रति एकड़ के हिसाब से मुख्य फसल को प्रदान करती है।

- नीम की पत्तियों के रस तथा नीम बीज के तेल का प्रयोग कीट नियंत्रण हेतु अत्यंत लाभकारी सिद्ध हुआ है।

- चने की मृत इल्लियों से तरल द्रव्य को निकालकर एन. पी.वी. (न्यूक्लिर पालीहाइड्रोसिस वायरस) की खोज की गई है। जो इल्लियों में वायरस बीमारी फैलाकर उन्हें नष्ट कर डालता है। यह अन्य परजीवी कीटों को नहीं मारता।

- परजीवी कीट ट्राईकोग्रामा की खोज की गयी है, जो चना, सोयाबीन, गन्ना, कपास आदि फसलों को हानि पहुंचाने वाली इल्लियों के अण्डों को खा जाता है।

- पौधों की जड़ों से संबंधित उकठा रोग हेतु ट्राइकोडर्मा की खोज अत्यंत ही प्रभावशाली सिद्ध हुई है।

- स्यूडोमोनास फ्लोरोसेन्स का प्रयोग भी पौधों की बीमारियों की रोकथाम में उपयोगी साबित हो रहा है।

अतः जैविक कृषि तकनीकी न केवल पर्यावरण सुरक्षा एवं मानव स्वास्थ्य की दृष्टि से उत्तम है बल्कि रसायन आधारित खेती की तुलना में कम लागत से अधिक लाभ पहुंचाने वाली एवं कृषि के लम्बे समय के टिकाऊपन के लिये भी उपयोगी है। जैविक खेती में प्रयोग होने वाले जैविक खाद किसान स्वयं बना सकते हैं।

वर्तमान परिपेक्ष्य में कृषि एवं पर्यावरणीय समस्याओं से निजात पाने के लिये आवश्यक हो गया है कि बिना रसायनों के प्रयोग के हम उच्च गुणवत्ता और उत्पादकता को कैसे हासिल करें? ऐसी परिस्थिति में हमें पुनः अपनी परंपरागत पद्धति, जिसे जैविक खेती कहते हैं की तरफ अग्रसर होना पड़ेगा। अर्थात हमें उपलब्ध जैविक खादों जैसे हरी खाद, फसल अवशेष, गोबर खाद तथा विभिन्न सूक्ष्म जीवों से निर्मित जैव उर्वरकों का मृदा में प्रयोग करना होगा, जिससे मानव के लिये उच्च गुणवत्ता युक्त कृषि उत्पाद तथा पशुधन के लिये भूसा–चारा प्राप्त होगा। टिकाऊ खेती के इस चक्र को स्थापित करने के लिये

किसानों को पशु–पालन करना आवश्यक है।

रसायनिक बनाम जैविक खेती

कृषि रसायनों और रसायनिक उर्वरकों के अन्धाधुंध प्रयोग से हाने वाले दुष्परिणामों से किसानों को अवगत कराना आवश्यक है। सघन फसल प्रणाली के तहत् विगत कई दशकों से किसानों द्वारा उर्वरकों, कीटनाशकों, शाकनाशियों व पादप नियामकों का अत्यधिक प्रयोग किया जा रहा है जिसके परिणामस्वरूप भूमि की उत्पादकता घट रही है और पर्यावरण भी बिगड़ता जा रहा है। इनके निरंतर और असंतुलित प्रयोग से मृदा के रासायनिक और जैविक गुणों तथा फसल की पैदावार और गुणवत्ता पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ रहा है।

भारत के अधिकांश क्षेत्रों में नाइट्रोजन, फास्फोरस व पोटाश का प्रयोग एक अनिश्चित अनुपात में किया जा रहा है। देश में वर्ष 2005–06 के दौरान उक्त अनुपात 9:3:1 का रहा है जो कि बहुत ही असंतुलित है। वस्तुतः नाइट्रोजन, फास्फोरस तथा पोटाश के प्रयोग का आदर्श अनुपात 4:2:1 होना चाहिए। जैविक खेती की तुलना में रासायनिक खेती से भूमि के भौतिक, रसायनिक और जैविक गुणों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है जिससे पोषक तत्वों एवं खनिज लवणों का बहुत बड़ा हिस्सा पौधों को प्राप्त नहीं होता है। जैविक खेती से मृदा संरचना व उर्वरता में सुधार होता है।

सबसे पहले जैविक खादों एवं जैव उर्वरकों तथा पौध संरक्षण में प्रयुक्त प्राकृतिक विधियों को समझना होगा। जैविक खाद वही खाद है, जिसका प्रयोग हम खेती के प्रारंभिक दौर से करते आ रहे हैं और आज भी कमोबेश इनका प्रयोग कर रहे हैं। इसी श्रृंखला में कुछ नवनिर्मित खाद तथा नाडेप कम्पोस्ट, वर्मीकम्पोस्ट आदि भी जुड़ गए हैं, जबकि जैव उर्वरक सूक्ष्म जीवाणुओं का पीट लिग्राइट या कोयले के चूर्ण बने मिश्रण हैं, जिन्हें बीजोपचार एवं अन्य प्रकार से भूमि में मिला देने पर ये वायुवीय नत्रजन तथा मृदा में उपस्थित अनुपलब्ध पोषक तत्वों को उपलब्ध अवस्था में बदलकर पौधों को उपलब्ध करवाते हैं। इस प्रकार की सजीव सामग्री को ही जैव उर्वरक कहते हैं।

मृदा के भौतिक, रासायनिक और जैविक गुणों पर रासायानिक उर्वरकों का प्रभाव

मृदा गुण	जैविक खेती	रासायनिक खेती
अम्लता या पी.एच.	7.26	7.55
विद्युत चालकता (डेसीमी.)	0.76	0.78
कार्बनिक कार्बन (प्रतिशत)	0.585	0.405
नाइट्रोजन (प्रतिशत)	0.068	0.050
नाइट्रोजन (किग्रा./हे.)	256.0	185.0
पोटाश (किग्रा./हे.)	50.5	28.5
कार्बनिक बायोमास	459.5	426.5
(मिग्रा./किग्रा./मिट्टी)	273.0	217.0
एजोटोबैक्टर (1000/ग्रा. मिट्टी)	11.7	0.8
फास्फोरस बैक्टीरिया (100000/किग्रा. मिट्टी)	8.88	3.2

स्त्रोत : जैविक खेती के प्रमुख सूत्र–सूक्ष्मजीव विज्ञान संभाग, भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद, नई दिल्ली।

विभिन्न प्रकार की कार्बनिक खादें एवं उनमें पाये जाने वाले प्रमुख पोषक तत्वों की मात्रा (प्रतिशत)

मृदा गुण	नत्रजन	स्फुर	पोटाश
गोबर खाद	0.50	0.20	0.50
मुर्गी खाद	3.03	2.63	1.40
मछली खाद	4-10	3-9	0.3-1.5
कम्पोस्ट खाद	0.60	1.50	2.30
बायोगैस-कम्पोस्ट	1.2	0.80	1.50
कपास (छिलका रहित)	6.50	2.89	2.17
मूंगफली की खली	7.29	1.53	1.33
नीम की खली	5.22	1.08	1.48
हड्डी चूर्ण	3.88	21.26	1.00

गोबर खाद

गोबर की खाद पशुओं के ठोस तथ द्रव मल–मूत्र को किसी पोषक पदार्थों जैसे बिछावन, भूसा, पुआल, पेड़–पौधों की पत्तियां, रेत या लकड़ी का बुरादा आदि से मिलाकर तैयार किया जाता है।

कम्पोस्ट

कम्पोस्ट बनाना एक जैविक प्रक्रिया है जिसमें सूक्ष्म जीवों द्वारा कार्बनिक पदार्थो, खरपतवार, भूसा, पुआल, फसलों के अवशेष, मल–मूत्र आदि को सड़ाकर उनका कार्बन–नाइट्रोजन अनुपात घटाया जाता है। कम्पोस्ट मुख्यतः दो प्रकार से बनायी जाती है –

- **नाडेप कम्पोस्ट :** इसमें एक निश्चित लम्बाई–चौड़ाई एवं गहराई का ईंटों का छिद्रयुक्त गढ्ढा तैयार कर उसमें एक नियोजित प्रक्रिया के अनुसार गोबर एवं कूड़ा–कचरा की भराई करते हैं।

स्थानीय संसाधन से तैयार नाडेप कम्पोस्ट

- **केंचुआ खाद (वर्मीकम्पोस्ट) :** एक जैविक प्रक्रिया, जिसमें केंचुएं कार्बनिक पदार्थो व गोबर को एक उचित वातावरण में रखकर खाद के रूप में परिवर्तित करते है, इस प्रकार तैयार खाद वर्मी कम्पोस्ट कहलाता है। यह क्षेत्र की मृदाओं में कार्बनिक पदार्थों के घटते स्तर के कारण भूमि की घटती हुई उर्वरा–उपजाऊ शक्ति एवं जल धारण क्षमता को बढ़ाने में अत्यधिक है तथा इसको बनाने में बहुत कम खर्च आता है।

हरी खाद

फसलें जो मृदा में जीवांश पदार्थ की मात्रा स्थिर रखने अथवा बढ़ाने के लिये उगाई जाती हैं, हरी खाद की फसल कहलाती हैं तथा उनका सस्य क्रम में उपयोग हरी खाद देना कहलाता है। हरी खाद के रूप में सन,ढैंचा, सिस्बेनिया रोस्ट्रेटा उपयुक्त है। जहां सिंचाई सुविधा उपलब्ध हो तथा जहां धान रोपा पद्धति अपनाई जाती हो, वहां हरी खाद का उपयोग लाभकारी है। ढैंचा बीज 30–35 कि.ग्रा. प्रति हेक्टेयर की दर से बुवाई कर के 40–50 किलो ग्राम प्रति हेक्टेयर नत्रजन पौधों को उपलब्ध होती है।

फसल अवशेष प्रबंधन

हमारे देशों में फसल अवशेष का उपयोग मृदा में जीवांश या नत्रजन की मात्रा बढ़ाने के लिये नहीं कर पाते क्योंकि उनका अधिकतर भाग पशुओं को चारे–भूसा के रूप में खिलाया जाता है। विशेष रूप में गेंहूँ का भूसा, धान का पुआल, ज्वार, बाजरा, मक्का की कड़वी आदि पशुओं को खिलाने के काम आती है।

जहां चारे की कमी नहीं होती, वहां के किसान मक्का, ज्वार, गेंहूँ व धान के अवशेष को खुले ढ़ेरों के रूप खाद तैयार होने के लिये छोड़ देते है, यह विधि त्रुटिपूर्ण है। इनसे कम्पोस्ट खाद तैयार करना आवश्यक है। हमारे देश की जलवायु व सिंचाई को ध्यान में रखते हुए चारा–भूसा के अतिरिक्त शेष बचे फसल अवशेष से कम्पोस्ट बनाना उचित पाया गया है। इन अवशेषों में औसतन कार्बन–नत्रजन अनुपात 50:1 होता है तथा इनके विच्छेदन में 50 प्रतिशत नमी की आवश्यकता होती है।

जैविक खादों से लाभ

इनमें सभी पादप पोषक तत्व पाये जाते हैं। किसान आसानी से अपने खेत पर तैयार कर सकते हैं (कम्पोस्ट, गोबर की खाद, हरी खाद, वर्मी – कम्पोस्ट आदि)। इनकी लागत कम होती है तथा ये पौधों को धीरे–धीरे पोषक तत्व प्रदान करते हैं। जिससे भूमि में दीर्घकालिक प्रभाव होता है। इनके उपयोग से भूमि की भौतिक, रासायनिक व जैविक दशा में सुधार होता है, वायु संचार बढ़ता है तथा ताप नियंत्रित रहता है। जैविक खाद भूमि में लाभकारी जीवाणुओं की वृद्धि करते है। फास्फोरिक अम्ल तथा पोटाश भूमि में काफी समय तक अघुलनशील अवस्था में रहते है, जैविक खाद के प्रयोग से पौधों को इनकी उपलब्धता बढ़ जाती है।

अतः खाद्यान्न उत्पादन में निरंतर वृद्धि बनाए रखने के लिये मृदा उर्वरता को संरक्षित करना आवश्यक है क्योंकि उर्वरक मृदा ही उत्पादक हो सकती है। पर्यावरण संरक्षण आज की बाजारू मांग के अनुरूप कृषि उत्पाद की पैदावार तथा टिकाऊ खेती के लिये किसानों को स्वयं जैविक खाद का निर्माण एवं यथाशक्ति उनका उपयोग करना चाहिए।

■

ज्ञानेन्द्र कुमार व लोकेश कुमार टिण्डे
1,2 (आई.सी.ए.आर.- एस.आर.एफ.)
विधान चन्द्र कृषि विश्वविद्यालय, मोहनपुर
(वेस्ट बंगाल)

अरविन्द कुमार सांई
कृषि विज्ञान केन्द्र, दन्तेवाडा

राजमणि व अंशुमान श्रीवास्तव
चन्द्रशेखर आजाद कृषि एवं प्रौद्योगिकर विश्वविद्यालय

डिकेश्वर निषाद
इंदिरा गांधी कृषि विश्वविद्यालय, रायपुर
(छत्तीसगढ़)

खेती की तरफ लौटना

एस. उषा, आर. दीपक एवं मंजू नैयर

खाद्य अनाजों पर से अपना नियन्त्रण खो देने वाली केरल की महिलाएं स्थानीय स्तर पर उपलब्ध होने वाली जैविक पद्धतियों को अपनाकर अब फिर से खेती की तरफ लौट रही हैं। इस पारिस्थितिकी तंत्र पद्धति में रूचि लेते हुए बहुत से किसान समूह एवं संगठन कृषिगत जैव विविधता को समृद्ध बनाने की कला सीख रहे हैं।

शशिकला एक प्राकृतिक किसान

केरल में गृहवाटिका, नारियल, रबर, कोकोआ, काफी आदि पौधों का पौधरोपण करना, इन पौधों का प्रसार करना आदि विविधता आधारित खेती की संस्कृति लुप्त होती जा रही है। इसका सबसे बड़ा दुष्परिणाम यह हुआ कि महिलाओं का अपनी खाद्य प्रणाली तथा स्वास्थ्य की देख–भाल से सम्बन्धित गतिविधियों पर से नियंत्रण समाप्त हो गया। महिलाओं के पास अपनी जमीन होते हुए भी, वे अपने भोजन के लिए बाजार पर निर्भर रहने लगी। वास्तव में, इस प्रवृत्ति ने राज्य में और परिवारों में विशेषकर गुणवत्ता एवं विविधता के सन्दर्भ में यहाँ पर निवास करने वाले परिवारों की खाद्य असुरक्षा को बढ़ावा दिया।

राज्य के त्रिवेन्द्रम जिले में विझींयम एवं वेंगानूर पंचायतों के लोगों की आजीविका का मुख्य साधन पर्यटन उद्योग के अलावा खेती एवं मत्स्य पालन है। इन दोनों पंचायतों के बहुत से राम्परगत किसान पुरूष हैं और वे यहां की प्रमुख फसलों – सब्ज़ियों, केला एवं कसावा (टापिओका) को उगाने के लिए रसायनिक उर्वरकों पर निर्भर करते हैं। अधिकांश किसान रसायनों, मृदा स्वास्थ्य अथवा स्थाई खेती के मुद्दों को लेकर संवेदनशील नहीं हैं। इस गंभीर मुद्दे को ध्यान में रखते हुए तिरूवनन्तपुरम में स्थित तथा पर्यावरण, मानव स्वास्थ्य एवं आजीविका के मुद्दे पर सघन रूप से काम करने वाली संस्था थनल ने वर्ष 2002 से इन दोनों ग्राम पंचायतों में महिला किसानों के साथ काम करना प्रारम्भ कर दिया।

> हाल ही में वायनाड जिले के थिरूनेली पंचायत में किये गये एक अध्ययन के परिणाम यह दर्शाते हैं कि स्थानीय महिलाओं के पास लगभग 100 तरह के ऐसे खाद्य पौधों के बारे में जानकारी हैं, जिनकी खेती नहीं की जाती, वे विशेषकर जैविक विधि से की जाने वाली धान की खेती में स्वतः उग आते हैं।

थनल ने कोवलम में, स्थानीय महिलाओं का समूह बनाकर उनके साथ बात–चीत में शामिल होकर उनके जीवन एवं आजीविका को समझने का प्रयास किया और यह पाया कि इन महिलाओं को पंचायत के द्वारा समूह के रूप में तो गठित किया गया है, परन्तु अभी तक उनका जुड़ाव किसी भी तरह की आयजनक गतिविधियों से नहीं हो पाया है।

ये महिलाएं सिर्फ दैनिक मजदूरी करती हैं और इसके अलावा ये अपनी आजीविका के स्थाई विकल्पों के बारे में सोच भी नहीं रही थीं। पंचायत के साथ चर्चा करने के बाद, थनल ने महिलाओं के लिए आय अर्जन की गतिविधियों के ऊपर विभिन्न प्रकार के प्रशिक्षणों का आयोजन प्रारम्भ किया। इन प्रशिक्षणों में नारियल के खोल से, कागज, बेकार कपड़ों, जूट आदि से उपयोगी व सजावटी सामग्री तैयार करना शामिल था। दो समूह ऐसे भी थे, जो खेती, विशेषकर सब्ज़ी उत्पादन में रूचि रखते थे। लेकिन इन समूहों की अधिकांश महिलाओं के पास अपनी जमीन नहीं थी।

इन महिलाओं की मदद करने के लिए, गांव के कुछ भूमिधरों से सम्पर्क कर उनकी खाली जमीन को इन महिलाओं को दिला दिया गया और औपचारिक समझौता हो जाने के बाद इन महिलाओं ने उस पर सब्जी की खेती करना प्रारम्भ कर दिया। वास्तव में यह नारियल का

वेंगानूर पंचायत में रहने वाली शशिकला का रूचि खेती के प्रति बचपन से ही थी। शादी होने के बाद, उन्होंने खेती की गतिविधियों में अपने पति का हाथ बंटाना शुरू कर दिया। तब वह परम्परागत खेती करती थीं और सामान्यतः रसायनिक खाद का प्रयोग करती थीं। थनल एवं गांधी स्मारक निधि आदि संगठनों के सम्पर्क में आने तथा उनके द्वारा आयोजित प्रशिक्षण कार्यक्रमों में भागीदारी निभाने के बाद से उन्होंने जैविक खेती के बारे में अधिकाधिक सीखना प्रारम्भ किया। कृषि भवन से अनुदान का सहयोग मिलने के बाद फूलों जैसे आर्किड एवं अन्थूरियम पौधों की खेती जैविक विधि से करना प्रारम्भ कर दिया।

वर्ष 2005–06 में उन्होंने फूलों की खेती सफलतापूर्वक की और अपने पड़ोसियों में उसे बांट दिया, उसी समय उनकी एक मित्र ने उन्हें बैगन के बीज दिये। शशिकला ने बैगन की खेती भी जैविक विधि से की और बेहतर उपज प्राप्त किया। उन्होंने जैविक विधि से उगाये सब्जी के स्वाद को स्वयं महसूस किया और फिर जैविक विधि से सब्जी उत्पादन के प्रति गम्भीर हुईं। उन्होंने अपने साथ के लोगों तथा अन्य दूसरे स्थानों से पारम्परिक सब्ज़ियों के बीजों को एकत्र करना प्रारम्भ किया। अब उन्होंने खेती में अधिक समय देना प्रारम्भ कर दिया और इसमें उनके परिवार वाले भी उनका सहयोग करने लगे। शशिकला त्रिवेन्द्रम जैविक बाजार की एक मुख्य आपूर्तिकर्त्ता भी हैं। उनकी सफलता को देखते हुए वेगानूर पंचायत तथा गांधी स्मारक निधि ने उन्हें एक बेहतर किसान के रूप में चयनित किया था।

उनका कहना है कि जैविक खेती प्रारम्भ करने से उन्हें सिर्फ आमदनी ही नहीं हो रही है, वरन् वे अपने परिवार को सुरक्षित भोजन भी उपलब्ध करा पा रही हैं। शशिकला अपनी कुल जमीन के 30 प्रतिशत भाग में जैविक सब्ज़ियों की खेती करने के साथ–साथ टैरेस पर भी खेती करती हैं। वे भिण्डी, बैगन, टमाटर, मिर्च, कुंदरू, अरवी, सेम, सहजन, करी पत्ता, पपीता, बन्दगोभी, फूलगोभी, अदरक, हल्दी, चौलाई आदि सहित लगभग सभी प्रकार की सब्ज़ियां उगाती हैं। वे पानी का उपयोग बहुत सावधानी से करती हैं और सब्ज़ियों की सिंचाई तथा मृदा मल्चिंग के लिए खुले कुंए के पानी का उपयोग करती हैं ताकि मृदा में पर्याप्त नमी बनी रहे। वह मिश्रित खेती और फसल चक्र पद्धति अपनाती हैं। उनका यह भी कहना है कि उनके खेत में मित्र कीटों की संख्या बहुतायत में हो जाने से अब उन्हें जैविक कीटनाशकों के छिड़काव की भी आवश्यकता नहीं पड़ती है। यह एक स्व स्थाई खेत बन गया है और उनके खेत का सब्ज़ियों वाला 30 प्रतिशत हिस्सा एक सुन्दर विविधीकृत बगीचा की तरह दिखता है।

जब शशिकला ने जैविक विधि से सब्ज़ियों की खेती करना प्रारम्भ किया था, उस समय उनकी आमदनी रू0 1000.00 प्रति माह थी जबकि आज अपने घरेलू उपभोग के बाद जैविक सब्ज़ियों को बेचकर उन्हें प्रतिमाह रू0 4000.00 की आमदनी होती है। खेती एवं स्वस्थ भोजन से सम्बन्धित अपने अनुभवों को उन्होंने अन्य किसानों, दोस्तों एवं रिश्तेदारों के साथ साझा किया, परम्परागत बीजों को लोगों के साथ बांटा और जैविक सब्जी उत्पादन के ऊपर बहुत से लोगों को प्रशिक्षित भी किया। उनकी राय में, ''यदि हम पौधों से प्यार करेंगे, उनकी देख–भाल करेंगे तो वे हमारे साथ धोखा नहीं करेंगे और फलों के रूप में अपनी खुशी जाहिर करेंगे।''

बागीचा था और दो पौधों के बीच में अच्छी–खासी जगह थी। इस जमीन की न तो मिट्टी अच्छी थी, न पानी की उपलब्धता थी और हरित खाद या जैविक खाद भी इन महिलाओं को उपलब्ध नहीं था।

जैव विविधता तथा मृदा एवं फसलों के जैविक प्रबन्धन पर प्रशिक्षित इन महिलाओं ने इसमें काम करना शुरू कर दिया। एक वर्ष में ही नारियल का यह बगीचा विविध प्रकार की सब्ज़ियों, कन्द एवं केला के पौधों के साथ जैवविविध बगीचा के रूप में तैयार हो गया। महिलाओं ने बगीचे की देख–भाल अच्छी तरह से की, जिसका नतीजा यह रहा कि नारियल का उत्पादन भी बढ़ गया और बगीचे के मालिक यह बदलाव देखकर बहुत खुश हुए। यह एक बड़ी शुरूआत थी और बहुत से दूसरे किसान तथा भू–स्वामी इस बगीचे को देखने के लिए आने लगे।

प्रारम्भ में, महिला किसानों ने अपने उत्पाद को अपने पड़ोसियों को बांटना शुरू किया। धीरे–धीरे, उपज बढ़ती गयी और उनमें से कुछ महिलाओं ने स्थानीय बाजार में सब्ज़ियों को बेचना शुरू कर दिया। हालांकि, इन स्थानीय बाजारों में महिलाओं को उनके उत्पाद का उचित मूल्य न मिलने से वे हतोत्साहित ही होती थीं। इसलिए वे अपने उत्पादों के लिए एक अलग बाजार चाहती थीं। वे चाहती थीं कि एक ऐसी जगह हो जहां उपभोक्ता आयें और उनके उत्पादों की सराहना करते हुए उन्हें खरीदें। इस कारण जैविक बाजार का प्रारम्भ हुआ, जो तिरूवनन्तपुरम का पहला जैविक बाजार था।

अपनाने के लिए मॉडल

केरल की महिलाएं अब खेती तथा खाद्य उत्पादन की तरफ फिर से वापस आने लगी हैं। उनमें से अधिकांश

www.leisaindia.org

A website for learning and sharing experiences on LEISA practices

Main Features

- Space to share your LEISA experience.
- A source for LEISA practices followed by farmers.
- An archive of LEISA India magazines—English edition and regional editions (Kannada, Tamil, Hindi, Telugu, Oriya, Punjabi and Marathi)
- Photos and videos on LEISA practices.
- Interesting cases of people following LEISA practices.

Follow us on Facebook: www.facebook.com/Leisaindiamag

Follow us on Twitter: @LeisaIndia

महिलाएं कम बाहरी निवेश की खेती अथवा सामान्यतया स्थानीय स्तर पर अपनायी जाने वाली जैविक खेती का अनुसरण कर रही हैं। वे इसे करते हुए बहुत से फायदे प्राप्त कर रही हैं। वे अपने घरेलू उपभोग के लिए जहर मुक्त भोजन प्राप्त कर रही हैं। वे बिना किसी बाहरी निर्भरता के खेती कर सकती हैं, जानकारियां विकसित कर सकती हैं और इसे लोगों में बांट सकती हैं। इसके साथ ही वे अपनी घरेलू जिम्मेदारियों को निभाते हुए अतिरिक्त आय अर्जन भी कर सकती हैं। महिलाओं को अपनी नई जानकारियों एवं क्षमताओं पर गर्व है। इनमें से कुछ महिलाएं प्रशिक्षक की भूमिका भी निभा रही हैं।

इन दो पंचायतों में कम बाहरी निवेश एवं विविधीकृत खेती पर तैयार किये गये मॉडलों को राज्य के अन्य भागों में भी अपनाया जा रहा है। अब बहुत सी पंचायतें एवं कृषि विभाग विशेषकर भूमिहीन, लघु एवं सीमान्त किसानों का सहयोग करने के लिए विभिन्न परियोजनाओं का संचालन कर रहे हैं। बहुत से किसान समूह एवं संगठन इस पर्यावरणसम्मत माध्यम के बारे में रूचि ले रहे हैं और वे कृषिगत जैव विविधता को समृद्ध करते हुए अपनी खाद्य तथा पोषण आवश्यकताओं को पूरा करने की कला को सीखना चाहते हैं।

■

उषा एस
थनल
ओडी-3, जवाहर नगर
पोस्ट- कौवाडीर, तिरूवनन्तपुरम
केरल- 695003
ईमेल : ushathanal@gmail.com

Women forging change
LEISA INDIA, Vol 17, No.4, Dec. 2015

संजीव ने खेती कर राष्ट्रीय स्तर पर बनायी पहचान

संदीप कुमार

सब्ज़ियों की खेती आज बहुत प्रचलन में है और लोगों विशेषकर महिला किसानों के लिए यह एक लाभप्रद आयजनक गतिविधि भी है। ऐसी स्थिति में सब्ज़ियों की खेती के लिए गुणवत्तापूर्ण बीजों का स्थानीय स्तर पर उत्पादन एवं विपणन एक अच्छी गतिविधि के रूप में सामने आ रही है। वैशाली जिला बिहार के संजीव कुमार एक ऐसे ही उदाहरण के रूप में गोभी का बीज उत्पादन कर रहे हैं।

वैशाली जिले का एक छोटा सा गांव है, चकवारा, जो गंडक नदी के तट पर बसा हुआ है। इस गांव में सौ से अधिक परिवार निवास करते हैं। गांव में मात्र दो लोग नौकरी करते हैं, बाकी सभी परिवारों की आजीविका का आधार सब्ज़ियों की खेती है। खेती की बदौलत ही इस गांव के 99 प्रतिशत मकान पक्के हैं। गण्डक के तट पर लगने वाला एशिया का प्रसिद्ध मेला स्थल सोनपुर मेला इसी क्षेत्र में आता है। इसके साथ ही यहां की एक विशेषता यह भी है कि यहां के प्रगतिशील किसानों द्वारा उत्पादित किये गये हाजीपुर अगैती गोभी के बीजों की मांग कश्मीर को छोड़कर पूरे देश के हर कोने में है और यहां के युवाओं में खेती के प्रति ललक एवं उत्साह आज भी बखूबी देखी जा सकती है। इसी चकवारा गांव के रहने वाले श्री संजीव कुमार एक प्रगतिशील किसान हैं, जिन्होंने इण्टर तक शिक्षा ग्रहण करने के बाद खेती से अपना नाता जोड़ लिया और अपनी मेहनत और लगन के बल पर जल्द तैयार होने वाली हाजीपुर अगैती गोभी के बीजों को उत्पादित कर बेच रहे हैं।

यह किस्म सामान्य फूलगोभी की अपेक्षा पहले तैयार हो जाती है। जहां पर सामान्य गोभी के पौधे में 60 से 65 दिनों में फूल आते है, वहीं हाजीपुर अगैती में 40 से 45 दिनों में फूल आने लगते हैं। इसकी विशेषता यह भी है कि इसके

पौधे में धूप—बारिश सहने की क्षमता ज्यादा होती है। इसके फूल सफेद, ठोस तथा खुशबूदार होने के अलावा तीन से चार दिनों तक ताजा बने रहते हैं। संजीव कहते हैं कि हमारे परिवार में पारंपरिक बीज से गोभी की खेती चार पीढ़ियों से की जा रही है, परन्तु जब से हमने हाजीपुर अगैती प्रजाति का अपनाया है, तब से अधिक आय हो रही है। आज ये अपने तीन एकड़ में इस प्रजाति की गोभी की सब्जी की खेती कर लाखों की आय प्राप्त कर रहे हैं।

इस प्रजाति के लिए उपयुक्त भूमि के बारे में बताते हुए संजीव कुमार का कहना है कि— अगैती गोभी के बीज की खेती विभिन्न प्रकार की भूमियों में की जा सकती है। किन्तु गहरी दोमट भूमि जिसमें पर्याप्त मात्रा में जैविक खाद उपलब्ध हो सके, इसके लिए अच्छी होती है। हल्की रचना वाली भूमि में पर्याप्त मात्रा में जैविक डालकर इसकी खेती की जा सकती है। जिस भूमि का पीएच मान 5.5—6.5 में मध्य हो वह भूमि फूल गोभी के लिए उपयुक्त मानी गई है। उनका कहना है कि पहले खेत को पलेवा करें जब भूमि जुताई योग्य हो जाए तब मिट्टी पलटने वाले हल से दो बार जुताई करें इसके बाद दो बार कल्टीवेटर चलाएं और प्रत्येक जुताई के बाद पाटा अवश्य लगाएं। हाजीपुर अगैती (चकवारा), कुंआरी, कातिकी वर्ग की किस्मों में सितंबर व अक्तूबर के मध्य तक (जब तापमान 0—25 डिग्री सेल्सियस) फूल आते हैं। इसकी बुआई मध्य जून तक तथा रोपाई जुलाई के प्रथम सप्ताह तक कर देनी चाहिए। अधिक उपज के लिए भूमि में पर्याप्त मात्रा में खाद डालना अत्यंत आवश्यक है।

मुख्यत मौसम की फसल को अपेक्षाकृत अधिक पोषक तत्वों की आवश्यकता होती है इसके लिए एक एकड़ खेत में 35—40 क्विंटल गोबर के अच्छे तरीके से सड़ी हुई खाद और जैविक खाद का इस्तेमाल करें, बेहतर होगा। ये अपने बीज के नमूने विदेशो में भी भेजते हैं। इसका परिणाम सकारात्मक रहा। इन्होंने गोभी के बीज को नार्वे, स्वीडन, इथोपिया, ब्रिटिश उच्चायोग, हंगरी, जापान कसटर्नल आफ एग्रीकल्चर आर्गेनाइजेशन, कनाडियन उच्चायोग, हालैंड तथा कोरियाल ट्रेड सेन्टर को भेजा, जहां से सराहना मिली। कोरिया की बीज कंपनी के प्रतिनिधियों ने हाजीपुर में होने वाली फूलगोभी की खेती को देखने की इच्छा व्यक्त की और यहां के किसानों को अपने यहां आने का न्योता भी दिया।

पुरस्कार व सम्मान

संजीव को इस कार्य के लिए भारतीय सब्जी अनुसंधान परिषद, वाराणसी द्वारा 2009 के राष्ट्रीय सब्जी किसान

पुरस्कार ग्रहण करते संजीव कुमार

मेला व प्रदर्शनी में रजत पुरस्कार व प्रशस्ति—पत्र दिया गया। 2010 में भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नयी दिल्ली द्वारा उन्नत प्रौद्योगिकी व अन्य आधुनिक तकनीकों को अपना कर कृषि की उत्पादकता बढ़ाने व कृषि के व्यावसायीकरण के प्रोत्साहन में सराहनीय योगदान के लिए उन्हें प्रशस्ति पत्र दिया गया। 2013 में इसी संस्थान द्वारा आयोजित किसान मेले में प्रगति किसान की उपाधि से उन्हें सम्मानित किया गया।

2011 में अमित सिंह मेमोरियल फाउंडेशन, नयी दिल्ली द्वारा उद्यान रत्न पुरस्कार से नवाजा गया। 2012 में उन्हें इंडिया एग्रो पुरस्कार मिला। बिहार दिवस समारोह में 2012 में कृषि क्षेत्र में उत्कृष्ट उपलब्धि के लिए प्रशस्ति पत्र दिया गया। 2013 में भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान द्वारा कृषि क्षेत्र का सर्वोत्तम का पुरस्कार दिया गया।

संदीप कुमार
पत्रकार
मिथिला कोआपरेटिव
फेज-बी, रोड नं० 9
राजीव नगर, पटना-24
ईमेल : san007ht@gmail.com

आजीविका सुधार हेतु जल प्रयोग गतिविधियों को उन्नत बनाना

मिन बहादुर गुरूंग, गोविन्द बसनेत, शहरयार वाहिद एवं गुलाम रसूल

नेपाल के कोसी बेसिन में पानी की वर्तमान मांग को पूरा करने हेतु पारम्परिक जल प्रयोग गतिविधियां पर्याप्त नहीं हैं। जल की बढ़ती मांग को पूरा करने के लिए जल प्रबन्धन में किये गये अच्छे कार्यों और बेहतर उत्पाद परिणामों को इस आशय से दस्तावेजित किया गया है ताकि इनका दुहराव बड़े पैमाने पर हो सके।

फोटो : केशब पाण्डेय

परिवार स्तर पर निर्मित प्लास्टिक तालाब में एकत्रित पानी

नेपाल के कोसी बेसिन में जल की बढ़ती मांग के पीछे विभिन्न क्षेत्रों से पानी के लिए उत्पन्न हो रही प्रतिस्पर्धा के साथ–साथ बढ़ती जनसंख्या तथा जलवायु परिवर्तन भी एक प्रमुख कारण है। चीन, भारत और नेपाल के बीच में विभाजित कोसी नदी बेसिन इस क्षेत्र की एक महत्वपूर्ण सीमा पार नदी बेसिन है, जो अधिकांशत खेती पर निर्भर करने वाले लगभग 40 करोड़ लोगों को आजीविका उपलब्ध कराती है। जनसांख्यिकी में बदलाव के कारण कोसी बेसिन पर पड़ने वाले प्रभावों को कम करने की दिशा में लोगों द्वारा जल संसाधनों को प्रबन्धित करते हुए जलवायु परिवर्तन से निपटने की दिशा में प्रयास किये जा रहे हैं।

जल की बढ़ती मांग तथा श्रम उपलब्धता में बदलाव के मुद्दे पर काम करने हेतु स्थानीय प्रशासन, स्वैच्छिक संगठनों, विकास के मुद्दों पर काम करने वाले तथा समुदाय के बहुत से लोगों ने जल के प्रयोग को बेहतर बनाने के ऊपर अपना ध्यान केन्द्रित किया। उनके प्रयास जल प्रयोग से सम्बन्धित गतिविधियों को प्रोत्साहन देने पर केन्द्रित हैं। ये वे गतिविधियां हैं, जो जल की कमी वाले क्षेत्रों में अच्छा कार्य करते हुए बेहतर परिणाम दे रही हैं और बड़े पैमाने पर दुहराव हेतु इन्हें संस्तुत किया जा रहा है। जल प्रयोग से सम्बन्धित ये गतिविधियां बाढ़ और सूखा की मार झेल रहे महिला एवं अन्य सीमान्त समूहों की अनुकूलन क्षमता को बढ़ाने में सहायक हो रहे हैं। जल प्रबन्धन में बेहतर या सफल गतिविधियों को दस्तावेजित करने हेतु एक अध्ययन भी किया गया।

अध्ययन के दौरान सरकारी संगठनों, अन्तर्राष्ट्रीय स्वैच्छिक संगठनों, संयुक्त राष्ट्र संगठनों, स्वैच्छिक संगठनों एवं अन्य समुदाय आधारित संगठनों के कुल 28 मुख्य सूचनादाताओं से सम्पर्क स्थापित किया गया। इसके अतिरिक्त विभिन्न जल प्रयोग अभ्यासों से सम्बन्धित मुद्दों को समझने हेतु कुछ स्थानों पर क्षेत्र भ्रमण भी किया गया।

जल प्रयोग अभ्यास

सिंचाई में जल प्रयोग

नेपाल में बहुत से स्थानों में, बेहतर कृषिगत उत्पादन के लिए कई तरीकों से जल का उपयोग किया जाता था। सफल अभ्यासों के दो प्रकारों– तालाब से सिंचाई एवं गैर पारम्परिक सिंचाई तकनीकों को कोसी बेसिन में प्रोत्साहित किया गया और बड़े पैमाने पर लोगों ने इसे अपनाया, उपयोग किया तथा अकेले अथवा किसानों के समूहों द्वारा प्रबन्धित किया गया। ये अभ्यास उन स्थानों पर अधिक उपयोग किये गये, जहां पर या तो जलस्रोतों से पानी बहुत कम आता था अथवा उबड़–खाबड़ जमीन होने के कारण पानी का बहाव सही से न हो पाने के कारण परम्परागत तरीके से नहरों से सिंचाई नहीं हो सकती थी। सामान्यतः तालाब सिंचाई और गैर–परम्परागत सिंचाई तकनीकों को उच्च मूल्य फसलों जैसे सब्ज़ियों आदि की खेती करने के लिए

अनुदान के तौर पर उपयोग किया गया। इसके साथ ही पारम्परिक तरीके से सिंचाई सम्भव न हो पाने वाले क्षेत्रों में रहने वाले लोगों को सिंचाई सुविधा उपलब्ध कराने हेतु इसे अपनाकर सामाजिक समानता के मुद्दे को उभारने में भी सहायता मिली।

उन क्षेत्रों में, जहां सिंचाई के लिए नहरों में पर्याप्त पानी नहीं होते थे, वहां पर तालाब से सिंचाई एक अच्छी संभावनाओं वाले विकल्प के तौर पर उभरा। इस व्यवस्था में, नहरों, पाइपों अथवा वर्षा से प्राप्त जल को पहले से ही खुदे एक तालाब में एकत्र किया गया। सामान्यतः ये तालाब या तो सीमेण्ट से या फिर प्लास्टिक से बने हुए होते हैं। इन तालाबों में एकत्र पानी को सिंचाई पाइप के माध्यम से खेतों तक ले जाते हैं और स्प्रिंकलर्स या बूंद पद्धति के माध्यम से फसलों की सिंचाई करते हैं। कुछ स्थितियों में, कई परिवार मिलकर एक तालाब को साझा करते हैं, जबकि बहुत से परिवार अपना स्वयं का तालाब तैयार करते हैं। इस व्यवस्था में तालाबों को बनाने तथा चलाने के लिए बहुत अधिक परिवारों की आवश्यकता नहीं पड़ती। तालाब से सिंचाई के इस तरीके के अन्तर्गत परम्परागत सिंचाई प्रणाली की अपेक्षा जल का प्रयोग अधिक प्रभावी ढंग से किया जाता है। इसका एक लाभ यह भी है कि विकेन्द्रित प्रणाली होने के कारण व्यक्ति एवं समुदाय दोनों ही अपने काम के लिए अपने स्वयं के जल को प्रबन्धित करने में सक्षम होते हैं।

एकीकृत जल प्रयोग

जल का संकट बढ़ने के सन्दर्भ में अगर बात की जाये तो एकीकृत जल प्रयोग एक प्रभावी अनुकूलन माध्यम है। एकीकृत जल प्रयोग के अन्तर्गत एक अच्छे अभ्यास ''बहु जल प्रयोग सेवाओं'' को दस्तावेजित किया गया। बहु जल प्रयोग सेवाओं के अन्तर्गत प्रयोगकर्ताओं की घरेलू एवं उत्पादक आवश्यकताओं के सन्दर्भ में बहु स्रोतों से प्राप्त जल की रूपरेखा तैयार की गयी। सूक्ष्म सिंचाई तकनीकों जैसे बूंद सिंचाई एवं स्प्रिंकल सिंचाई प्रणालियों को पेय जल आपूर्ति प्रणाली के साथ एकीकृत किया गया। बहु जल प्रयोग प्रणाली कुशल जल प्रयोगों को बढ़ावा देता है और इस प्रकार कम जल उपलब्धता वाले क्षेत्रों में जल प्रबन्धन का एक क्षमतापूर्ण माध्यम है। ऐसी स्थिति में जबकि पेयजल आपूर्ति के बहुत से जल स्रोत निरन्तर खुले रहते हैं और सिंचाई सुविधाएं बहुत दूर स्थित होती हैं तथा मौजूदा जलस्रोतों से बहुत कम मात्रा में पानी निकलता है, उस समय जलवायु परिवर्तन से निपटने हेतु बहु जल प्रयोग एक मूल्यवान अनुकूलन माध्यम हो सकता है। बहु जल प्रयोग से सम्बन्धित तकनीक को समुदाय स्तर पर भी प्रबन्धित किया जा सकता है।

वर्षा जल संग्रहण से आजीविका को उन्नत बनाना

ताजी सब्ज़ियां उगाते हुए आजीविका उन्नत करने के लिए वर्षा जल संग्रहण एक भरोसेमन्द अभ्यास के तौर पर

नेपाल में सौर उर्जा आधारित बहु जल उपयोग प्रणाली

लौसीखोला गांव के धीतल ग्राम्य विकास समिति के लोगों ने एक नयी जल आपूर्ति प्रणाली को स्थापित किया। इस पूरी प्रणाली का समग्र प्रबन्धन जल उपयोगकर्त्ता समिति करती है। पानी उठाने के लिए उर्जा हेतु गांव के बीच में सोलर पैनल के एक सेट को पड़ी मुद्रा में रख दिया गया है। पहले से ही स्थापित जल संग्रहण टैंको में पानी एकत्र होता रहता है। इसके अतिरिक्त, टैंक के नीचे अलग से एक प्लास्टिक के तालाब को रख दिया जाता है ताकि अधिक होने पर पानी उसी में गिरे। प्लास्टिक के तालाब में एकत्रित टैंक से अधिक हुए पानी का इस्तेमाल आस–पास के घर वाले सब्जी वाटिका की सिंचाई के लिए करते हैं। परिवारों के बीच जल का वितरण करने के लिए 9 टैप लगाये गये हैं। औसतन, एक टैप से पांच परिवार पानी लेते हैं। जल की उपलब्धता बढ़ने के साथ–साथ, किसानों ने बाजार के लिए सब्ज़ियां उगाना प्रारम्भ कर दिया। इस योजना से जल एकत्र करने में महिलाओं एवं बच्चों के लगने वाले श्रम एवं समय की बचत हुई, लोगों को स्वच्छ पेयजल मिलने लगा और और परिवारों विशेषकर महिलाओं की आर्थिक स्थिति बेहतर हुई है।

लौसी खोला गाँव में एक सौर जल प्रणाली

जल उपयोग संघ सामुदायिक सिंचाई प्रणाली का प्रबन्धन करते हैं

अपनायी गयी। कुछ क्षेत्रों में, छतों से पानी एकत्र कर आस–पास के क्षेत्रों में बने तालाबों में पाइप के माध्यम से भेजा गया और उसका उपयोग कर उच्च मूल्य की फसलें उगायी गयी।

नेपाल के कभरेपालनचक जिले के मिथीनकोट गांव में, सिंचाई तालाबों का निर्माण कर किसानों ने ताज़ी सब्ज़ियां उगानी प्रारम्भ कर दिया है। मिथीनकोट के आस–पास का क्षेत्र सूखा होने के कारण वहां के प्रत्येक परिवार ने वर्षा जल संग्रहण करने के लिए प्लास्टिक तालाब का निर्माण किया है। इस संग्रहित पानी से उन्होंने बूंद व पाइप दोनों पद्धतियों से अपने फसलों की सिंचाई की। इस प्रकार पानी का कुशलतापूर्वक उपयोग करते हुए किसान सब्ज़ियों के बीज उत्पादित कर बेच रहे हैं और अपनी आमदनी को बढ़ाते हुए गांव में ही अपनी आजीविका को उन्नत कर रहे हैं। दो वर्षों के बाद, उन्होंने सब्जी बीज उत्पादन को प्रोत्साहित करने हेतु एक सब्जी बीज उत्पादन सहकारी समिति की स्थापना की। प्रारम्भ में, उन्होंने विभिन्न प्रकार की सब्ज़ियों के बीजों को उगाना शुरू किया। चार वर्षों बाद, किसानों ने 30 टनल के माध्यम से 30 किग्रा0 हाइब्रिड प्रजाति के टमाटर के बीजों को उगाया। प्लास्टिक तालाबों का निर्माण एक रणनीति के तहत् अभ्यास में लाया जा रहा है ताकि बरसात के मौसम में उसका उपयोग किया जा सके।

जल संरक्षण

नेपाल में, एक तरह से यह रिवाज ही है कि किसान सामुदायिक जमीनों पर तालाबों का निर्माण एवं देख–रेख करते हैं। वर्ष के कठिन दिनों में लोगों को सिंचाई के लिए जल उपलब्ध कराने के अतिरिक्त ये तालाब भूगर्भ जल के पुनर्भरण में भी अपना योगदान देते हैं। हालांकि, समय बीतने के साथ, इन तालाबों की देख–रेख न होने तथा उपेक्षा के कारण ये तालाब समाप्त प्राय हो गये हैं और हाल के वर्षों में, जल संकट वाले क्षेत्रों में काफी लोकप्रिय हो रहे ये सिंचाई तालाब प्लास्टिक या सीमेण्ट से बने होने के कारण स्थानीय भूगर्भिक प्रणाली को सही करने में कोई योगदान नहीं दे पाते हैं।

स्थानीय भूगर्भिक प्रणाली में जल पुनर्भरण करने के उद्देश्य से कुछ स्थानों पर लोगों ने जल संरक्षण तालाबों को पुनर्जीवित करना प्रारम्भ कर दिया। कभरेपालनचक जिले के जैसीथोक गांव के किसानों ने कुछ सामुदायिक तालाबों का पुनर्निर्माण करना प्रारम्भ कर दिया है। तालाबों के स्तर से नीचे जल स्रोत होने की स्थिति में ये जल पुनर्भरण तालाब ज्यादा पानी देने में सहयोग करते हैं। ठीक इसी प्रकार, इन तालाबों के होने से धान की समय से खेती सुनिश्चित हो पाती है। अन्य क्षेत्रों में भी इस तरह के पुनर्भरण तालाबों का निर्माण किया जा रहा है अथवा पहले से बने तालाबों का सुन्दरीकरण किया जा रहा है। ये पुनर्भरण तालाब स्थानीय भूगर्भ को पुनर्भरण करने के साथ ही तेजी से बहने वाले पानी को भी रोकने का काम करते हैं, जिससे मृदा का नुकसान भी कम हो रहा है।

निष्कर्ष

बेहतर जल प्रयोग अभ्यासों का विश्लेषण करने के बाद स्पष्ट होता है कि इन अभ्यासों ने जल प्रयोग के विभिन्न पहलुओं को उन्नत करने में योगदान दिया है और इन सभी गतिविधियों ने समुदाय के रहन–सहन तथा पर्यावरणीय संरक्षण को बेहतर बनाने में अपना सहयोग दिया है। इन गतिविधियों ने आजीविका एवं सामुदायिक सशक्तता को बढ़ाने में प्रत्यक्ष तौर पर योगदान दिया है। इन गतिविधियों के कारण स्थानीय संगठन मजबूत हुए हैं और इन अभ्यासों का टिकाऊपन दिखने लगा है। इनमें से बहुत सी गतिविधियां जल संकट वाले क्षेत्रों में की जा रही हैं और इसीलिए जल के कुशलतापूर्वक उपयोग पर अधिक जोर दिया जा रहा है, क्योंकि जल की कम उपलब्धता को देखते हुए पानी का उपयोग कुशलतापूर्वक किया जाना अधिक महत्वपूर्ण है।

सन्दर्भ

डी0 भटराई एवं अन्य, नेपाल के जल उपयोगकर्ता संगठन : 9 केस स्टडी का संग्रह, 2012
सहभागी सिंचाई पद्धति पर अन्तर्राष्ट्रीय नेटवर्क, काठमाण्डू

■

मिन बहादुर गुरूंग, गोविन्द बसनेत, शहरयार वाहिद एवं गुलाम रसूल
आई.सी.आई.एम.ओ.डी., पोस्ट बाक्स 3226
काठमाण्डू, नेपाल

Water-lifeline for livelihoods
LEISA INDIA, Vol 17, No.3, Sept. 2015